ISSN–2277- 8721

EIIRJ Electronic International Interdisciplinary Research Journal

Volume–XIII, Issues – I (Special Issues -II) Jan – Feb 2024

OPEN ACCESS Original Research Article

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भारतेंदु का सुधारवादी द्रष्टिकोण

प्रा.डॉ. शेख मुखत्यार

अध्यक्ष, हिंदी विभाग,

ए.शि.प्र.मं. कला महाविद्यालय, बिडकीन। तहसील-पैठण, जिला-औरंगाबाद।

प्रो. डॉ. यशवंतकर संतोषकुमार

अध्यक्ष, हिंदी विभाग,

ज.भ.शि.प्र.मं. कला व विज्ञान महाविद्यालय, शिवाजीनगर, गढी, तहसील-गेवराई, जिला-बीड।

भूमिका :

भारतीय नेता एक ओर तो सरकार के सामने अपनी मांगे पेश करते थे, जो प्रायः राजनीतिक हुआ करती थीं और दूसरी ओर, मुख्यतः सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में, वे जनता को सुधारने और उसको उन्नति के मार्ग की ओर अग्रसर करने के लिए सदा प्रयत्न करते रहते थे। शुरु में तो इन विविध सुधारवादी आंदोलनों को सार्वजनिक जीवन में इतना महत्व दिया जाता था कि राजनीतिक सभाओं के साथ-साथ सुधारवादी सभाएं भी हुआ करती थीं। प्रायः नेतागण दोनों प्रकार की सभाओं में भाग लिया करते थे। कुछ लोगों का विचार था कि राजनीतिक कार्यक्रम की अपेक्षा सामाजिक एवं धार्मिक कार्यक्रम को अधिक महत्व मिलना चाहिए, क्योंकि जनता का इससे सीधा और घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसके विपक्षी दल का विचार था कि राजनीतिक शासन की बागडोर अपने हाथ में लिए बिना सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों में समय और शक्ति लगाना व्यर्थ है। विजय अंत में राजनीतिक पक्ष वालों की हुई। किंतु यह बहुत बाद की बात है। जब तक भारतेन्दु जीवित रहे तब तक राजनीतिक और सामाजिक (बधिशेलनों) का आपस में गठबंधन रहा, ये एक दूसरे के साथ चलते थे। अंगरेजों के आने से भारत को आर्थिक एवं सांस्कृतिक अवस्था की भारी धक्का पहुंचा था। किन्तु उससे लाभ भी अनेक हुए थे। मुगलिया सल्तनत के अन्तिम दिनों में भारतीय जीवन की व्यवस्था ढीली और अनुशासनहीन हो चली थी। अधःपतन और विनाश ने समाज के अंग-अंग में प्रवेश कर लिया था। देश में प्रमाद, आलस्य और मिथ्याचार ने घर कर लिया था। समाज और संस्कृति के घातक चिन्ह प्रगट हो गए थे। नवीन धारा के कवि अपने देश की इन दुर्बलताओं और बुराइयों से अनभिज्ञ नहीं थे। अंगरेज़ी राज्य के सुखों की सराहना करने के साथ-साथ देश की पतितावस्था भी प्रमुख रुप से उनके सामने खड़ी होती थी। जिस समय भारतवर्ष अंधकार के गर्त में डूबा हुआ था उस समय उसका पश्चिम की एक जीवित जाति के साथ सम्पर्क स्थापित हुआ।

ISSN–2277- 8721

EIIRJ Electronic International Interdisciplinary Research Journal

Volume–XIII, Issues – I (Special Issues -II) Jan – Feb 2024

OPEN ACCESS Original Research Article

फलतः देश में स्फूर्ति और उत्तेजना उत्पन्न होना अवश्यंभावी था। अंगरेजों के सम्पर्क से जिन नवीन और उन्नत विचारों का जन्म हुआ उनके प्रकाश में भारतीय जीवन का फिर से संस्कार करने की बात सोचना स्वाभाविक ही था और कुछ हद तक इसके लिए भारतवर्ष में अंगरेज़ों की उपस्थिति आवश्यक और ईश्वर द्वारा प्रेरित समझी गई। अंगरेज़ी राज्य में भी देशवासियों को आलस्यता, निरुपमता, उनका आलस्य, पतनोन्मुख संतोष आदि की ओर लक्ष्य करते हुए भारतेन्दु भारत के मुख से कहलाते हैं - "कोऊ नहीं पकरत मेरो हाथ।/बीस कोटि सुत होत फिरत मैं हा हा होय अनाथ।।..."1 इन्हीं अंग्रेज़ों के सम्पर्क में आाने पर भारतेन्दु अपने देशवासियों को उन्नतिपथगामी देखना चाहते थे। किंतु - "अंगरेजहु को राज पाइकै रहे कूढ़ के कूढ़।/स्वारथ-पर विभिन्न मति-भूले हिंदू सब है मूढ़।।/जग के देस बढ़त बदि-बदि के सब बाजी जेहि काल।/ताहू समय रात इनको है ऐसे ये बेहाल।।"2

Copyright © 2024 The Author(s): This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY-NC 4.0) which permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium for non-commercial use provided the original author and source are credited.

इस संबन्ध में उन्होंने तत्कालीन भारत में प्रचलित निर्धनता, बुभुक्षा, अकाल, महंगाई, रोग, फूट, बैर, कलह, आलस्य, संतोष, खुशामद, कायरता, टैक्स, अनैक्य, यवनों द्वारा देश की दुर्दशा, धार्मिक मतमतान्तर, छुआछूत, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, जन्मपत्र से विधि मिलाकर विवाह करना, बहु-विवाह, विधवा-विवाह-निषेध और उससे उत्पन्न व्यभिचार, अशिक्षा और अज्ञानता, रुढ़ि-प्रियता, समुद्र-यात्रा-प्रतिबन्ध अर्थात् विलायत-गमन-निषेध और फलतः कूपमंडूक बने रहना, बाह्य संसार से विमुखता, ईश्वर को भूलकर देवी-देवता, भूत प्रेतादि की पूजा में चित्त देना, धार्मिक कर्मकांड और पाखंड, धर्म की आड़ में धर्म-वंचकता और व्यभिचार, राजा-महा-राजाओं की बुद्धि-बल-हीनता, नारी-विहार, व्यभिचार आदि, अपव्यय, अदालती बुराइयां, पुलीस के अत्याचार, फैशन, सिफारिश, घूस, शिक्षितों की बेकारी, पुलीस के कारनामों, सुरा-सेवन, मांस-भक्षण आदि धार्मिक और सामाजिक कुप्रवृत्तियों एवं कुप्रथाओं, श्राचार-विचार-हीनता और नैतिक पतन का अपनी विविध रचनाओं में उल्लेख किया है। इनमें से कुछ बातें तो पहले से चली आ रही थी और कुछ उस समय पैदा हो गई थीं। इनसे भारत का सर्वनाश हो रहा था और चारों ओर अंधकार ही अंधकार दिखाई देता था। अंगरेज़ी शिक्षितों में पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान से लाभ उठाकर देश-सेवा में तत्पर होने के स्थान पर वहां के आचार-विचारों का अन्धानुकरण अत्यधिक प्रचलित हो गया था। वे बहुत-सी ऐसी बातें करते थे जिनसे कट्टर भारतवासियों को ही नहीं, वरन् देशभक्त, नवशिक्षित, उन्नत और उदार एवं प्रगतिशील व्यक्तियों तक को मर्मातक पीड़ा होती थी। उन्होंने भाषा, धर्म, अपने श्राचार-विचार, व्यवहार, खाना-पीना, रहन-सहन आदि को योजन दूर अलग रख दिया था। वे 'बाबू बनिवे के हित' तो मारते थे, किन्तु देश-सेवा के नाम से उनके प्राण निकलते थे। अपनी देशी जनता को भी वे घृणा की दृष्टि से

ISSN–2277- 8721

EIIRJ Electronic International Interdisciplinary Research Journal

Volume–XIII, Issues – I (Special Issues -II) Jan – Feb 2024

OPEN ACCESS Original Research Article

देखते थे। भारतेन्दु तथा उनके सहयोगियों ने मद्यपान, मांस-भक्षण आदि के विरुद्ध केवल नैतिक भावना से प्रेरित होकर आवाज़ उठाई हो सो बात नहीं। इन तथा अन्य नवोदित बुराइयों से अनेक कठिनाइयां उत्पन्न हो रही थीं और राष्ट्रीय जीवन का ह्रास हो रहा था। बंगाल के हिंदू कालेज के अंगरेज़ी-शिक्षितों के उत्पात को कौन नहीं जानता। अपनी 'प्रगतिशीलता' की झोंक में वे मांस तथा अन्य अभक्ष्य पदार्थ कट्टर हिंदुओं के घरों में फेंक देते थे। इससे शांति-भंग होने की बराबर आशंका बनी रहती थी। भारतीय स्वभावतः सहिष्णु होते हैं। वे चाहते थे कि अंगरेज़ी-शिक्षित अपने लिए चाहे जो कुछ करें, स्वयं उनके जीवन में किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुंचाई जानी चाहिए। किंतु अंगरेज़ी-शिक्षितों के व्यवहार से सब समझदार व्यक्तियों को दुःख पहुंचता था। मद्यपान का उस समय इतना प्रचार बढ़ गया था कि शिक्षित लोग शराब न पीने वालों को असभ्य समझते थे। वे उसे सभ्यता का 'मूलसूत्र' समझते थे। नशे में चूर होकर वे समाज के लिए संकट पैदा कर देते थे। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी प्रभूति देशभक्तों ने भी पश्चिम के अन्धानुकरण से उत्पन्न ऐसो कुप्रवृत्तियों की जोरदार शब्दों में बुराई की थी। एक अंगरेज़ी अपनी भाषा, अपने साहित्य, देश, समाज की सेवा करता था, ज्ञान-पिपासा शांत करने के विविध साधन खोज निकालता था, उसमें अदम्य शौर्य और उत्साह था। किंतु अंगरेजी-शिक्षित भारतवासियों में इन गुणों के बदले अपने देश और समाज में न खपने वाली और अहितकारी बातों की प्रबलता पाई जाती थी । इन्हीं सब विषयों की ओर लक्ष्य करते हुए भारतेन्दु ने कहा है - "लिया भी तो अंगरेजों से औगुन ....!"3 अतएव भारतदुर्दैव के वीरों को देश में चारों ओर तूती बोल रही थी और वे अच्छी तरह 'भारतीयों से समझ रहे थे। छोटे-बड़े, अमीर-नारीच, शिक्षित-अशिक्षित सब पर उनका जाल बिछा हुआ था। वे नवयुग के प्रकाश में अपनी उन्नति का मार्ग नहीं खोज पा रहे थे। यह देख कर भारतेन्दु को भारत के सर्वनाश की निश्चय आशा हो गई थी - 'निहचै भारत को अब नास।/... हित अनहित पशु पंछी जाना पै जानहिं नाहि।/भूले रहत आपुने रंस मैं फंसे मूढ़ता माहि।/जे न सुनहिं हित, भलो करहिं तिनसों आसा कौन'..."4 देश को दुर्दैव से बचाने के लिए, एक मत, संगठन (बंगाल के इंडियन एसोसिएशन की भांति) और समाचारपत्रों और सभाओं द्वारा आंदोलन करने की अत्यंत आवश्यकता थी। इसमें हाकिमों से डरने की कोई बात नहीं थी, क्योंकि 'हम लोग शदा चाहता कि अंगरेजों का राज्य उत्सन्न न हो, हम लोग केवल अपना बचाव करता।' इसके अतिरिक्त उद्योग-धंधों की उन्नति और स्वदेशी का प्रचार करना भी एक साधन था। अंगरेज़ों को निकालने की (उस समय) व्यर्थ बात सोचने के बजाय वे एकचित्त हो विद्या और कला की उन्नति चाहते थे ताकि देश की वास्तविक प्रगित हो। किंतु कुछ अंगरेज़ शासकों, विशेषतः छोटे-छोटे हाकिमों, की अनुदार नीति के कारण 'डिसलायल्टी' के अपराध में पकड़े जाने के भय से लोग कुछ करने में डरते थे। हमारे कवियों की वाणी तो इतनी क्षीण हो गई थी कि वे चूड़ियां पहिन कनात के पीछे से बाहर हाथ निकाल कर उंगुली चमका कर 'मुए इधर न आइयो इधर जनाने हैं' कह कर दुश्मन को पीछे हटाने के अतिरिक्त दूसरा उपाय न सोच पा रहे थे। दूसरे जो लोग सजग थे उनके लाख प्रयत्न करने पर भी देशवासियों की 'मोहनिद्रा' नहीं टूट रही थी। भारतेंदु के निराशापूर्ण शब्दों में -"भारतभाग्य - हा! भारतवर्ष को ऐसी

ISSN–2277- 8721

EIIRJ Electronic International Interdisciplinary Research Journal

Volume–XIII, Issues – I (Special Issues -II) Jan – Feb 2024

OPEN ACCESS Original Research Article

मोहनिद्रा ने घेरा है कि अच इसके उठने की आशा नहीं। सच है, जो जान-बूझकर सोता है उसे कौन जगा सकेगा ? हा दैव ! तेरे विचित्र चरित्र हैं, जो कल राज करता था वह आज जूते में टांका उधार लगवाता है ।... हा ! जिस भारतवर्ष का सिर व्यास, वाल्मीकि, कालिदास, पाणिनि, शाक्यसिंह, बाणभट्ट प्रभृति कवियों के नाममात्र से अत्र भी सारे संसार से ऊंचा है, उस भारत की यह दुर्दशा! ... हाय, भारत भैया, उठो! देखो विद्या का सूर्य पश्चिम से उदय हुआा चला आता है। अब सोने का समय नहीं है। अंगरेज का राज्य पाकर भीन जगे तो कब जागोगे। मूखों के प्रचंड शासन के दिन गए, अब राजा ने प्रजा का स्वत्व पहिचाना। विद्या की चर्चा फैल चली, सबको सब कुछ, कहने-सुनने का अधिकार मिला।"5

वास्तव में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अंगरेज़ों से अच्छी-अच्छी, जैसे देश-भक्ति, समाज-सेवा आदि, और उन बातों के लेने के पक्षपाती थे जिनसे देश अधोगति के गर्त से निकल कर उन्नति-पथ की ओर गतिमान हो सकता था और साथ ही जो बातें भारतीय चिंता पद्धति और जीवन में खप सकती थीं। उदाहरणार्थ, निज भाषा-ज्ञान और महत्व पर जोर देते हुए वे कहते हैं कि यद्यपि अंगरेज़ी पढ़ने से अनेक गुण प्राप्त होते हैं, किंतु उनका अपनी भाषा द्वारा प्रचार करने से ही कल्याण हो सकता है। घर में अपनी स्त्रियों को लोग उस समय अगरेज़ी नहीं पढ़ाते थे। और गुरुजनों से शिक्षा प्राप्त करने पर भी बालकों को प्रथम शिक्षिका माता ही रहती है। उस माता के ज्ञान के लिए हिन्दी भाषा परमावश्यक थी। अगरेज़ी-शिक्षित और निज-भाषा-ज्ञान-विहीन व्यक्ति घर से बाहर तो अपनी शान जमा लेता था, किन्तु घर के व्यवहार में वे निपट अज्ञानी बने रहते थे। या तो 'पतलून पहिन कर साहब बन जाते थे' या मौलवी साहब'। इससे वे अपनी स्त्रियों का भला न कर पाते थे। पतिदेव यदि 'देहरा' पूजते तो स्त्री 'भूत' पूजती थी। इसी से जब तक घर-घर में स्त्री और पुरुष 'विद्या-बुद्धि-निधान' न बन जाते तब तक उन्नति की कोई आशा नहीं थी। यह कार्य निज भाषा की उन्नति के बिना पूर्ण नहीं हो सकता था। इसलिए जिस प्रकार अंगरेज़ों ने अनेकानेक विद्याओं और ज्ञान के ग्रंथ अपनी भाषा में निर्मित तथा दूसरी भाषाओं से अनूदित कर अपनी उन्नति की उसी प्रकार भारत-वासियों को उनका अनुकरण करना चाहिए। अंगरेज़ी भाषा में अनेक त्रुटियां हैं। किन्तु अपनी भाषा जान कर अंगरेज उसे नहीं छोड़ते। उसी प्रकार भारतवासियों को भी अपनी भाषा नहीं छोड़नी चाहिए। प्रत्येक स्थान से गुण ग्रहण कर ही अंगरेज 'विद्या के भौन' बने हुए थे। भारत-वासियों को भी जो कुछ वे विदेशी भाषा में पढ़ें उसे अपनी भाषा में किए बिना अपने को कृतकृत्य नहीं समझना चाहिए। अंगरेज़ तो तुलसी कृत रामायण का आशय भी अपनी भाषा में किए बिना संतुष्ट नहीं होते। इस प्रकार धर्म, युद्ध, विद्या, कला, गीत, काव्य और ज्ञान के समझने के लिए निज भाषा की महत्ता बताते हुए वे कहते हैं - "...सौंप्यो ब्राह्मन को धरम तेई जानत वेद।/तासों निज मत को लह्यो कोऊ कबहुँ न भेद।।/तिमि जग की बिद्या सकल अंगरेजी आधीन।/सुबै जानि ताके बिना रहे दीन के दीन।।"6

तारों से खबरें किस प्रकार आती हैं, रेल किस प्रकार चलती है, मशीन किसे कहते हैं, तोप किस तरह चलती है, कपड़ा किस तरह बनता है, कागज किस विधि से तैयार होता है, कवायद किस तरह की जाती है, बांध कैसे बांधे जाते हैं, फ़ोटोग्राफ़ी किस प्रकार होती है आदि इन सब बातों का ज्ञान अंगरेज़ों भाषा के माध्यम द्वारा प्राप्त हो सकता था। इसी ज्ञान

ISSN–2277- 8721

EIIRJ Electronic International Interdisciplinary Research Journal

Volume–XIII, Issues – I (Special Issues -II) Jan – Feb 2024

OPEN ACCESS Original Research Article

के अभाव में धार्यगण का दिन-दिन पतन होता जा रहा था। इसी अभाव के कारण विदेशी कपड़े तथा अन्य वस्तुओं का प्रचार होता जा रहा था। धीर जिससे देश की निर्धनता दिन-दिन बढ़ती जा रही थी। यदि यह ज्ञान, जिस प्रकार अंगरेजी में था, अपनी भाषा में भी होता तो देश का धन बचता, लोग राजनीति, अपने देश के आचार-विचार, शिष्टाचार आदि बातें सीखते। वे अपना धर्म पहिचानते। इसलिए दूसरों के आधीन रहना छोड़ कर औरों की भांति अपनी भाषा द्वारा अपनी उन्नति करने के लिए उन्होंने प्रोत्साहन दिया। अंगरेज़ी ही नहीं संस्कृत, अरबी और फारसी के खुले खज़ानों से लूट मचाकर निज भाषा-भाण्डार भरने के वे पक्षपाती थे। वे चाहते थे कि विविध विषयों की छोटी-बड़ी किताबें रची जाकर बाल, वृद्ध, नर-नारि सत्र ज्ञान-संयुक्त हों और भारत में फिर से सुप्रभात हो। इस संबंध में उन्होंने अंगरेजों से ही शिक्षा ग्रहण की थी। इसी प्रकार नवोत्थान-काल के एक और प्रमुख विषय, स्त्रियों की उन्नति, के संबंध में वे लिखते हैं - "... 'जब मुझे अंगरेजी रमणी लोग मेदसिंचित केश-राशि, कृत्रिम कुंतलजूट, मिथ्या रत्नाभरण और विविधवर्ण वसन से भूषित, क्षीण कटिदेश कसे, निज निज पतिगण के साथ, प्रसन्नवदन इधर से उधर फर-फर कल की पुतली की भांति फिरती हुई दिखलाई पड़ती है तब इस देश की सीधी-सादी स्त्रियों की हीन अवस्था मुझको स्मरण आती है और यही बात मेरे दुःख का कारण होती है। इससे यह शंका किसी को न हो कि मैं स्वप्न में भी यह इच्छा करता हूं कि गौरांगी युवती-समूह की भांति हमारी कुल लक्ष्मीगण मी लज्जा को तिलांजलि देकर अपने पति के साथ घूमें, किन्तु और बातों में जिस भांति अंगरेजी स्त्रियां सावधान होती हैं, पढ़ी-लिखी होती है, घर का काम-काज संभालती हैं, अपने संतानगण को शिक्षा देती है; अपना स्वत्त्व पहचानती हैं, अपनी जाति और अपने देश की सम्पत्ति विपत्ति को समझती हैं, उसमें सहायता देती हैं और इतने समुन्नत मनुष्य-जीवन को व्यर्थ गृहदास्य और कलह में नहीं खोतीं, उसी भांति हमारी गृहदेवता भी वर्त्तमान हीनावस्था को उल्लंघन करके कुछ उन्नति प्राप्त करें, यही लालसा है। इस उन्नति-पथ का अवरोधक हम लोगों की वर्त्तमान कुल-परंपरा-मात्र है और कुछ नहीं है। आर्य-जन-मात्र को विश्वास है कि हमारे यहां सर्व्वदा स्त्रीगण इसी अवस्था में थीं। इस विश्वास के भ्रम को दूर करने ही के हेतु यह ग्रंथ विरचित होकर..."7 अंगरेज़ रमणियों को देख कर जो भाव उत्पन्न हुआ उसे भारतेन्दु ने भारतीय अनुकूलता प्रदान कर किस प्रकार पाठकों के सामने रखा है वह ध्यान देने योग्य है। साथ ही उन्होंने नोर-चोर-विवेक का व्यवहार भी किया है। इन्हीं बातों की वे अपने शिक्षित देशवासियों से आशा रखते थे। जिन विचारों को उन्होंने ऊपर व्यक्त किया है उनके और प्रारंभ में दुर्गापाठ से 'गर्ज-गर्ज हां क्षण मूढ यावत्पिबाम्यहम्' आदि और अंगरेजी में 'For the kiss she gave him was his first and last' आदि के अनुसार नीलदेवी उनके लिए आदर्श प्रतीक है। मुसलमानों के प्रति उनके विचारों का इस रचना से भी यथेष्ट परिचय प्राप्त होता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि वे पश्चिम का अन्धानुकरण पसंद न करते थे। साहित्य, इतिहास, पुरातत्व, आलोचना, पत्रकारकला, सभा-सोसायटियों की स्थापना, सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टिकोण आदि अनेक विषयों में उन्होंने पश्चिम से प्रेरणा ग्रहण की। किन्तु सब बातों का प्रतिपादन उन्होंने भारतीयता के नाते भारतीय दृष्टिकोण से किया। अनेक

ISSN–2277- 8721

EIIRJ Electronic International Interdisciplinary Research Journal

Volume–XIII, Issues – I (Special Issues -II) Jan – Feb 2024

OPEN ACCESS Original Research Article

अंगरेजी-शिक्षित व्यक्ति एक तो अभारतीय बातें ग्रहण करते थे, ऐसी बातें जो भारतीय समाज में अवगुण और त्याज्य समझी जाती थीं और जो यहां के चम, आचार-विचार तथा शिष्टाचार के प्रतिकूल थीं। फिर वे जो अभारतीय बातें ग्रहण करते थे उनमें भी अति कर देते थे। यह और भी दुःखदाई होता था। उधर दूसरी ओर अशिक्षित, ज्ञान-विज्ञान-विहीन अपार भारतीय जनसमूह था। वह भी अति के दूसरे किनारे पर था। कूप-मण्डूक बने हुए इस समाज की अत्यंत हीनावस्था थी। ज्ञान के सूर्य का प्रकाश उसके पास तक न पहुंच पाता था। भारतेंदु चाहते थे कि भारतवासी ज्ञान-विज्ञान के प्रकाश में अति का परित्याग कर मध्यम मार्ग ग्रहण करते और साथ ही भारतीयता को बनाए रखते हुए देश के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक, औद्योगिक आदि समस्त क्षेत्रों में उन्नति प्राप्त करते। उनका यही दृष्टिकोण स्वयं भारतीय सुधारवादी आंदोलनों के प्रति था। ये सामाजिक और धार्मिक सुधार चाहते थे, किन्तु अति का परित्याग करते हुए और पश्चिम के चकाचौंध से बच कर भारतीयता की रक्षा करते हुए। क्योंकि वे संगठन और ऐक्य चाहते थे, इसलिए अनेक नवीन और विभिन सुधारवादी आंदोलन उन्हें पसंद न थे। मतों की विविधता और विभिन्नता को वे भारतीय पतन का प्रधान कारण मानते थे। अतएव परंपरागत सनातन धर्म में ही काल और परिस्थिति के अनुसार सुधार करने के वे पक्षपाती थे। वे देवी-देवताओं, भूत-प्रेतों की पूजा के विरोधी थे। इनके स्थान पर वे विशुद्ध ईश्वर ज्ञान का उपदेश देते थे। सही प्राचीन सनातन धर्म के प्रति आर्य समाज की भावना का भी वे जोरदार शब्दों में वंदन करते थे। अंगरेजी शिक्षितों की सामाजिक और धार्मिक भारतीयता तो खैर उन्हें बिल्कुल न सुहाती थी। उन्हीं के शब्दों में - "भारत में एहि समय भई है सब कुछ बिनहि प्रमान हो दुइ-रंगी।/आधे पुराने पुरानहिं मानें आधे भए किरिस्तान हो दुइ-रंगी।।/क्या तो गदहा को चना चढ़ावैं कि होइ दयानंद जायं हो दुइ-रंगी।/क्या तो पढै कैथी कोठिवलियै कि होइ बरिस्टर धाय हो दुइ रंगी।।/एही से भारत नास भया सब जहां तहां यही हाल हो दुइ-रंगी।/होउ एक मत भाई सबै अब छोडहु चाल कुचाल हो दुइ-रंगी।।"8

वास्तव में जो ध्येय उग्रवादियों का था वही ध्येय भारतेन्दु हरिश्चंद्र का भी था। किन्तु वे उस ध्येय तक एकदम वेगपूर्वक न पहुंच कर धीरे-धीरे पहुंचना चाहते थे। वैसे भी भारतीय सभ्यता के इतिहास में यहां के धार्मिक और सामाजिक क्षेत्रों में क्रांतिकारी परिवर्तन देखने में नहीं आते। प्राचीन और नविन का संसर्ग होने पर यहां नविन प्राचीन को प्रभावित कर प्राचीन में मिलते और फलतः प्राचीन को एक नविन रुप धारण करते देखा गया है। विकास का यही सिद्धांत भारत का सामाजिक एवं धार्मिक प्रगति का आधार रहा है। भारतेन्दु भी इसी प्रगति-क्रम का अनुगमन करना चाहते थे। और इसीलिए वे उग्रवादियों से सहमत न हो पाते थे, फिर वे चाहे प्राचीन धर्म का ढोंग रचने वाले कूपमण्डूक ब्राह्मण हीं या आर्य समाजी, ब्रह्म समाजी हों या ईसाइयत का दम भरने वाले नव-शिक्षित भारतीय। सच्चे और वास्तविक हिंदू धर्म की पुनर्स्थापना ही उनका मुख्य ध्येय था।

हिंदी के उस नव-जागृति-काल में भाषा की ओर ध्यान जाना भी अवश्यम्भावी था। भाषा और समाज का अटूट सम्बन्ध है। उस समय मौलवी शिष्टाचार का प्राधान्य था। बैठना, उठना, बोलना, हंसना, बातें करना आदि फारसी-ज्ञान के आधीन था। अदालतों की भाषा उर्दू हो चुकी थी। उर्दू पठन-

ISSN–2277- 8721

EIIRJ Electronic International Interdisciplinary Research Journal

Volume–XIII, Issues – I (Special Issues -II) Jan – Feb 2024

OPEN ACCESS Original Research Article

पाठन के संबंध में जीविका की समस्या ही प्रमुख हेतु रही है। अंगरेज़ों शिक्षित समुदाय के जन्म से हिंदी की उन्नति के मार्ग में एक और रोड़ा अटक गया था। अंगरेज़ी भाषा शिक्षा-माध्यम का भी थी। इससे एक तो भाषा-साहित्य का पठन-पाठन कम हो गया, दूसरे सरकारी नौकरी ढूंढ़ने वाले अपनी भाषा और साहित्य के प्रति उदासीन हो गए। अस्तु, हिंदी पर उर्दू परस्त और अंगरेज़ीदां दोनों की कोप दृष्टि थी। भारतेन्दु को उर्दू या अंगरेज़ी में से किसी से भी किसी प्रकार का विरोध या उनसे घृणा नहीं थी। उर्दू में उन्होंने स्वयं 'रसा' उपनाम से काव्य-रचना की है और अंगरेज़ी से उन्होंने स्वाध्याय द्वारा बहुत कुछ सीखा। ज्ञान-वृद्धि के लिए वे किसी भी भाषा का अध्ययन करने के लिए प्रस्तुत रहते थे। वे स्वयं बहु-भाषाविद् थे। किंतु यह सब अपनी मातृ-भाषा हिंदी का ज्ञान-कोष भरने के लिए था, दूसरों का खज़ाना लूटकर अपना खज़ाना भरने के लिए था। हिंदी के प्रति अवहेलना और उसका अपमान वे किसी प्रकार भी सहन न कर सकते थे। हिन्दी प्रान्त में हिन्दी का अपमान हो यह तो जले पर नमक छिड़कने के बराबर था। मातृ-भाषा के अनादर से उनके आत्मसम्मान को ठेस पहुंचती थी। राष्ट्रप्रेमी की हैसियत से उन्होंने सरकारी नीति का विरोध किया और उर्दू परस्त तथा अंगरेज़ीदां भारतवासियों को कड़ी ताइत दी। यह भाषा-सम्बन्धी आंदोलन वैसे तो बहुत पहले ही शुरु हो गया था, परन्तु 1874 में भारतेंदु की 'उर्दू का स्यापा' शीर्षक कविता की रचना से इस आंदोलन ने निश्चित और उग्र रुप धारण कर लिया। 1877 में उन्होंने हिंदी के ज्ञान-कोष की वृद्धि के दृष्टिकोण से 'हिन्दी की उन्नति पर व्याख्यान' शीर्षक एक महत्त्वपूर्ण पद्यात्मक भाषण दिया । मातृभाषा का पक्ष ग्रहण कर सरकारी नीति का वे बराबर विरोध करते रहे। अपने अफसरों को खुश करने के लिए राजा शिवप्रसाद, हेनरी पिन्कौट के शब्दों में, अपनी भाषा का गला घोंट सकते थे। किन्तु भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से इस प्रकार की आशा कदापि न की जा सकती थी। उर्दू विदेशी जामा पहने हुए थी और हिन्दी से उसका सांस्कृतिक झगड़ा भी था। ऐसी हालत में उर्दू को जबर्दस्ती हिन्दियों के गले उतारते, हिन्दी की दुर्दशा देख कर भारतेन्दु जैसे राष्ट्र प्रेमी का विचलित हो जाना स्वाभाविक ही था। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने मनोभाव इस प्रकार प्रकट किए हैं - "भोज मरे अरु विक्रमहू किनको अब रोई कै काव्य सुनाइये।/भाषा भई उरदू जरा की अब तो इन ग्रंथन नीर डुबाइये।।/राजा भये सब स्वास्थ पीन अमीरहू हीन किन्हैं दरसाइये। नाहक देनी समस्या अबै यह "ग्रीषमै प्यारे हिमन्त बनाइये।।"9 परन्तु इतने पर भी हिन्दी-भाषियों में आशा का संचार कम नहीं हुआ था। भारतेंदु के बाद का हिंदी-प्रचार-आंदोलन इस बात का साक्षी है।

निष्कर्ष :

अस्तु, जो ऐतिहासिक क्रम समस्त पूर्वी संसार के अलसाए, जीवन में स्फूर्ति पैदा कर रहा था भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने उसमें अपना पूर्ण योग दिया। किंतु वे क्रांतिकारी न होकर सुधारवादी थे। या हम यह सकते हैं कि उनके सुधार ही मौन क्रांति का रुप धारण कर रहे थे। पश्चिमी विचारों के भूडोल ने भारत के प्राचीन सांस्कृतिक भवन को झकझोर डाला था। अच्छा यह हुआ कि उसकी नींव दृढ़ बनी हुई थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एक बिल्कुल ही नया भवन खड़ा करने के स्थान पर उसी प्राचीन दृढ़ नींव पर नए ज्ञान और अनुभव के प्रकाश में एक ऐसे भव्य प्रासाद का निर्माण करना चाहते थे जिसके साए में अपार भारतीय जनसमूह सुख और शांति- पूर्वक धर्म, अर्थ, काम

ISSN–2277- 8721

EIIRJ Electronic International Interdisciplinary Research Journal

Volume–XIII, Issues – I (Special Issues -II) Jan – Feb 2024

OPEN ACCESS Original Research Article

और मोक्ष जीवन के इन चारों फलों को प्राप्त कर सके। इस सम्बन्ध में सम्भव है हम उनके अनेक विचारों से सहमत न हों। किंतु उनके विचारों को आधुनिक मापदंड से नापना अनुचित और उनके प्रति अन्याय ही नहीं, वरन् वह हमारे अवैज्ञानिक ऐतिहासिक ज्ञान का परिचायक होगा। मानव इतिहास में प्रत्येक युग की अपनी कुछ समस्याएं होती हैं जो पिछले और आने वाले युगों से मेल नहीं खातीं। हां, उनमें अंतर्निहित एकसूत्रता अवश्य होती है। हो सकता है भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की राज्य-भक्ति, उनकी धार्मिक एवं सांस्कृतिक और आर्थिक रराष्ट्रीयता ग्राज देश की परिवर्तित परिस्थिति में हमको अव्यावहारिक जान पड़े। किंतु साथ ही हमें यह याद रखना चाहिए कि वे अपने युग-धर्म में पालित-पोषित थे। युग-धर्म छोड़ कर जहां उन्होंने सब युगों में समान रुप से अंतर्निहित एकसूत्रता के सम्बन्ध में कुछ कहा है वहां उनकी युग वाणी नहीं युग-युग की (वहूं) घोषित हुई है। उनकी यह वाणी अमर रहेगी। साथ ही मैं इस ओर भी संकेत कर देना चाहता हूं कि देश के उस संक्रमण-काल में उनकी युग-वाणी में साहित्यिक सौष्ठव की आशा करना हमारी ज्यादती होगी। उसमें साहित्यिक सौष्ठव प्रायः नहीं है, किंतु उसमें नवीन भारत का स्वर प्रतिध्वनित है। यह क्या कम है ?

आशा है हमारे आधुनिक कविगण भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के विचारों के प्रकाश में अपने नवीनतम ज्ञान और अनुभव का संबल लेकर भारतीय मंगल क्रांति के लिए शंख-ध्वनि करेंगे। पुनर्जन्म का सिद्धांत तो वैसे भी हमारी संस्कृति का प्रधान अंग है।

संदर्भ ग्रंथ:

1. भारतेंदु हरिश्चंद्र - भारतदुर्दशा (1880) भा.ना., इं.प्रे., पृ.599-600
2. भारतेंदु हरिश्चंद्र - भारतदुर्दशा (1880) भा.ना., इं.प्रे., पृ.619
3. भारतेंदु हरिश्चंद्र - भारतदुर्दशा (1880) भा.ना., इं.प्रे., पृ.610
4. भारतेंदु हरिश्चंद्र - भारतदुर्दशा (१८८०), भा.ना.इं.प्रे., पृ.619-620
5. भारतेंदु हरिश्चंद्र - भारतदुर्दशा (1880) भा.ना., इ.प्रे.पृ.634-637
6. भारतेंदु हरिश्चंद्र - 'हिंदी की उन्नति पर व्याख्यान' (1873), भा. नं., दि., ना.प्र.स., 44-45, पृ.734-735
7. भारतेंदु हरिश्चंद्र - नीलदेवी (1881), भा.ना., ई.प्रे, भूमिका भाग, पृ.643-644
8. भारतेंदु हरिश्चंद्र - वर्षा विनोद' (1880), भा.ग्रं., द्वि., ना.प्र.स., 42 , पृ.500-501
9. भारतेंदु हरिश्चंद्र - 'स्फुट-कविताएं, भा.ग्रं.द्वि.ना.प्र.स., ५, पृ.899

Cite This Article:

प्रा.डॉ. मुखत्यार श. & प्रो. डॉ. यशवंतकर स. ***(2024).*** *भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भारतेंदु का सुधारवादी द्रष्टिकोण*, In Electronic International Interdisciplinary Research Journal: Vol. XIII (Number I, pp. 140-147).

EIIRJ. https://doi.org/10.5281/zenodo.10652645